श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में धार्मिक जीवन–दर्शन

गीता रानी,
शोधार्थी, पीएच.डी (हिन्दी)
ओपीजेएस विश्वविद्यालय, राजस्थान

1. धर्म का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :

धर्म शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है धारण शक्ति। अतः किसी भी वस्तु की धारण शक्ति को धर्म कहा जाता है। महाभारत में कहा गया है। धारण करने के कारण धर्म, धर्म कहलाता है। धर्म प्रजा को धारण करता है जो धारण शक्ति से युक्त है, वही धर्म है, इसे निश्चय समझो।[1]

भारतीय धर्माचार्यों ने धर्म की अनेक परिभाषाएँ दी हैं। यास्क ने 'निरुक्तम्' में 'धर्म' का पर्यायवाची 'नियम' बताया है। धर्म वह नियम है जो आत्मा को ऊपर उठाकर परमात्मा के साथ सारूप्य स्थापित करने का मार्ग बतलाते हैं व मानव गुणों को अक्षुण्ण रखते हुए उसे मोक्षत्व की ओर ले जाते हैं। महर्षि कणाद ने कहा है कि जिसके द्वारा लौकिक सुख और अंतिम लक्ष्य की सिद्धि हो सके, वही धर्म है।[2]

धर्म प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक मनुष्य के साथ रहा है, जिसके कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्राचीन समय में धर्मविहीन व्यक्ति को पशु समान माना जाता था। वेदों, पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों में भी धर्मविहीन व्यक्ति की अवहेलना की गई है।

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में कहा गया है कि धर्म एक प्रकार से हमारा आदर्श गुरु है। यदि हम विजयी है तो हमारा हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं, किन्तु यदि हम उच्छृंखल हैं और गड्डे में गिरने को तैयार हैं, तो धर्म के अतिरिक्त हमें बचाने वाला कोई नहीं, धर्म हमें पतित नहीं होने देता। इसीलिए जब धर्म साहित्य के भीतर प्रतिष्ठित किया जाता है तो वह साहित्य को भी ऊँचा उठाता है, साहित्य में धर्म आदिकाल तक रहा है और अन्तकाल तक रहेगा।[3]

प्राचीन समय में सभी काम धर्म पर आधारित थे। शिक्षा हो या राजनीति, सभी धर्म के बिना अधूरे माने जाते थे। सिंहासन ग्रहण करने वाले राजकुमारों को पहले गुरु आश्रम में रहकर धर्म एवं नीति सम्बन्धी ज्ञान अपने गुरु से सीखना पड़ता था। गुरु के वचन की अवहेलना किसी भी कीमत पर नहीं की जा सकती थी। इसका सशक्त उदाहरण 'रामायण' के श्री रामचन्द्र जी व उनके गुरु वशिष्ठ है। अतः धर्म ही राजा का सही मार्ग–दर्शन करता था। धर्म केवल व्यक्ति तक सीमित न होकर समाज में प्रफुल्लित होता है। धर्म को सामाजिक सुधार का आधार बनाया जा सकता है किन्तु उसे समाज सुधार का आंदोलन नहीं बनाया जा सकता। धार्मिक मूल्य भारतीय समाज की आधारशिला है क्योंकि धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया को संचालित करता है। धर्म को जीवन में धारण करने से अर्थ, काम और मोक्ष की सहज प्राप्ति हो किसी विद्वान ने ठीक कहा है कि 'धर्म एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी अभिलाषाओं को प्रकट कर उन पर विजय प्राप्त कर सकता है।'[4] आज धर्म अपने आधुनिक रूप में केवल ब्राह्य आडम्बरों, पाखण्डों व झूठे प्रदर्शनों का दिखावा बनकर रह गया है। वर्तमान युग में विज्ञान की प्रधानता के कारण मनुष्य का जीवन भौतिकता और यान्त्रिकता से परिपूर्ण है। जिस कारण वह धर्म से अधिक विज्ञान पर विश्वास करता है। लेकिन जब वह अति भौतिकवादी होने के कारण मानसिक रोगों का शिकार होता है, तो धर्म की शरण में आकार ही उसको शक्ति मिलती है। इसीलिए आधुनिक युग में भी धर्म के अस्तित्व को नकारने की हिम्मत विज्ञान नहीं जुटा पाया। आज भी व्यक्ति के सम्पूर्ण क्रिया धर्म पर ही आधारित होती है। जीवन–मृत्यु, विग्रह प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का महत्त्व है। इसी कारण भारतीय चिंतकों ने धर्म का संबंध आध्यात्मिकता से जोड़ा है, जिसमें ईश्वर के प्रति आस्था अनिवार्य तत्त्व है।

लेकिन आज पाखण्डियों ने धर्म की भावना को कर्मकाण्डों में उलझा दिया है जिस कारण धर्म का उद्देश्य मानव–कल्याण न होकर जनता का शोषण हो गया है। अतः धर्म केवल लाभ कमाने का औजार

बनकर रह गया है। आज हम देख रहे हैं धर्म के नाम पर झूठ, विश्वासघात, पाखण्ड, आडम्बर खुलकर पनप रहे हैं। एक–दूसरे के समुदायों ने आपसी रंजिश का आधार धर्म बना दिया है।

धर्म एवं भाग्यवाद :

मानवीय जीवन में सद्भावनापूर्ण वातावरण बनाने के लिए धर्म को महत्त्वपूर्ण और प्रथम स्थन दिया गया है। धर्म वह धारणा है जो मानव को अपने जीने के साथ दूसरों को भी जीने की दिशा दिखाता है। धर्म का वास्तविक अर्थ यह है कि जिसमें व्यक्ति समाज में रहने की पद्धति का अनुपालन करता हुआ अपनी उन्नति करे और दूसरों को भी अपने ही समान समझकर अभ्युदय की ओर जाने दें।

भारतीय सामाजिक संरचना में भाग्यवाद की जड़ें काफी गहरी और पुरानी है। भाग्यवाद को नियतिवाद भी कहा जाता है। यह नियतिवादी विचारधारा पीढ़ियों से इस देश की चेतना में धुन्ध बनकर छाई है। इसका परिणाम यह हुआ कि मानवीय जीवन आस्था को विकृत करने वाले तत्त्व सक्रिय रहे और विकृतियों से ग्रस्त मनुष्य आर्थिक कारणों को खोजने में असमर्थ रहा। श्रम में अनास्था का जन्म भाग्यवाद में आस्था को पुष्ट करता है, साथ ही उचित मूल्य के अभाव में श्रम से अविश्वास और परायापन भी हो जाता है। भाग्यवाद भारतीय धर्म की प्रबल विसंगति है। यह मनुष्य को निष्क्रिय, प्रभावी एवं आलसी बना देती है।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने साहित्य में भाग्यवाद को महत्ता दी है। कई बार ऐसा होता है, जब भी कोई दुःखी होता है या किसी को अधिक दुःख मिलता है तो उसका भाग्य समझ लिया जाता है। इंसान सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है जो तर्कसंगत नहीं है।

भाग्यवाद :

सुशीला के भाग्य में जहाँ की जहालत भरी जिंदगी जीना नहीं लिखा था। वह तो यहाँ से जाकर ऐशो–आराम का जीवन जी रही है। यह तो सुन्दरी बहन का भाग्य है जो इस गाँव की गन्दगी भरी बस्ती में रह कर अपना जीवन व्यतीत कर रही है। यह इसकी गलती नहीं यह तो इसके भाग्य का लिखा है। भाग्य में जो हो उसको कौन मिटा सकता है। श्रीलाल शुक्ल जी ने सुन्दरी बहन के माध्यम से अपनी भाग्यवादी धारणा को स्पष्ट किया है।

उसने हाथों से मजबूरी का इशारा किया, 'यही सब।'

उन्होंने धीरे–धीरे सिर हिलाया, ऊपर की ओर आँखें उठाकर कहा, 'उसकी इच्छा–क्या कहा जा सकता है।'

ये शुद्ध औपचारिक शब्द थे। पर जब वे इन्हें बोल रहे थे, विवेक को लगा, गाँव के एक बहुत बूढ़े अजनबी के सामने वह खड़ा है, जिसका भाग्य के सिवा कोई संबल नहीं है तभी उनकी आवाज में परिवर्तन आया, उसका सहज रौब लौट आया। उन्होंने कहा, 'तो चलता हूँ। इसी महीने मेरा टर्म पूरा हो रहा है। आगे के लिए...।'[5]

कुंवरजयंती प्रसाद बुजुर्ग हो चुके हैं। उनका बेटा विवेक जब उनको छोड़कर नौकरी करने के लिए शहर में जाना चाहते हैं, तो विवेक उनकी बात नहीं मानता। वह कहता है कि वह अब गाँव में नहीं रह सकता। उसकी छुट्टियाँ खत्म हो गई है। अगली छुट्टियों में आपके पास आऊँगा। अपने पिता को अपने साथ चलने के लिए कहता है परन्तु कुंवरजयंती प्रसाद को शहर जाना पसंद नहीं है। वह इस बुढ़ापे में अकेले रहना, अपने भाग्य का दोष, मानता हुआ स्वीकार कर लेता है। कुंवरजयंती प्रसाद को संतोष करना पड़ता है कि इस बुढ़ापे में कोई उसका सहारा नहीं है। भगवान की इच्छा यही है कि वह बुढ़ापे में अकेला रहकर जीवन व्यतीत करें

कुंवर जंयती प्रसाद सिंह का सुन्दरी से परिचय होने के कुछ साल पहले ही जयश्री की मृत्यु हो चुकी थी। मृत्यु के समय वह 46 की रही होगी। प्रौढ़त को झुठलाती हुई एक उच्च्व वर्गीय सुसंस्कृत गृहणी। पर उनकी यादों पर उन दिनों जिसका साम्राज्य था वह यह गृहणी न थी, वह 24 साल पहले की राज्यश्री थी जिसे कुंवर जयंतीप्रसाद सिंह के भाग्य ने एक रात अचानक उनके अंधेरे कमरे में पहुंचा दिया।

ईर्ष्यालु सहकर्मियों का मानना था कि आजादी सबसे ज्यादा उसी को रास आयी है। पुराने लोग कहने लगे कि यह जयश्री के पुष्पों का फल है जो स्वर्गलोक से अपने परिवार पर निरंतर समृद्धि

बरसा रही है। बहरहाल, समय से रिटायर होकर वह अब दिल्ली के अभिजात–वर्ग का एक वयोवृद्ध, सम्मानित सदस्य बन चुका है।[6]

कुंवरजयंती प्रसाद की उम्र 46 वर्ष रही होगी। 24 वर्ष की उम्र में उनकी पत्नी जयश्री का देहान्त हो गया था। पत्नी की मृत्यु के बाद उनको काफी पदोन्नति मिली तथा समाज में एक आदरणीय पुरुष का दर्जा भी मिला। उनका मत था कि यह सब उनकी पत्नी जयश्री के पुष्पों का फल है जो स्वर्गलोक में जाकर उन पर समृद्धि बरसा रही है। देश में स्वतन्त्रता के बाद कुंवरजयंती प्रसाद को काफी तरक्की मिली है। इनकी पत्नी ने ही समृद्धि के द्वार खोल दिए है। कुंवरजयंती प्रसाद ने तो कभी कोई पुण्य कर्म नहीं किया, जो इनको जीवन में इतनी तरक्की मिलती। कुंवर साहब का अपनी पत्नी के भाग्य पर विश्वास है। जो भी हो, 'गधा' और 'मूर्ख' का भयावह प्रदर्शन 1 दिसम्बर के प्रातः काल में देखना मेरे भाग्य में लिखा था। कुछ दिनों से मेरे पेट में दर्द रहने लगा था। पेट के सामान्य विकारों की लगभग सभी दवाएँ उन्हें दी जा चुकी थीं। उन्हें डॉक्टरी दवाओं पर उतना विश्वास न था, पर मुझसे हार कर वे शहर के बड़े अस्पताल जाने के लिए तैयार हो गये।[7]

नारायण एक सितार वादक है। वह अपने परिवार से दूर रहता है। दिल्ली में उसका अच्छा मकान नहीं मिल पाने के कारण अकेलापन उसे तंग करता है।

इसी कारण नारायण शराब पीने की आदत डाल लेता है। यह शराब उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। उसके पेट में दर्द होना शुरू हो जाता है। वह मानते हैं कि यह सब मेरे भाग्य का लिखा है जो 1 दिसम्बर की प्रातः मुझे यह दुःख देखना पड़ा। आज से पहले मुझे कभी यह दर्द नहीं सहन करना पड़ा। शायद यह भाग्य का लेखा था कि मुझे अपने परिवार से दूर आकर रहना पड़ा। उसकी मर्जी के बिना कुछ नहीं होता।

जज साहब की उम्र ज्यादा न थी और बादशाह में उनकी दिलचस्पी पैदा हो गयी थी। इसीलिए मुकद्दमे की सुनवाई खत्म हो जाने पर वे बादशाह से उसके बारे में थोड़ी देर बात कर लिया करते। वे उसके अनुभव सुनने के लिए उतावले थे। पर बादशाह भगवान और भाग्य का नाम लेकर उनकी बात टाल दिया करता था।[8]

बादशाह एक बदमाश था। जेल में रहने के बाद वह काफी सुधर गया है। अब एक दिन जेल में जज साहब से मिलने जाता है वहाँ पर जज साहब बादशाह से पूछते हैं कि बादशाह ऐसा क्या है कि एक बार जो तुमसे बात कर लेता है वह तुमको नहीं भूल पाता। तुम कोई जादू–टोना जानते हो तो मुझे भी करिश्मा दिखा दो। परन्तु बादशाह हमेशा इस बात से इंकार करते थे। वे कहते थे कि ये तो भगवान और भाग्य का खेल है कि लोग हमको इतना पसंद करते हैं। वरना तो कौन किसको इतना याद करता है। हम कोई टोना–टोटका नहीं जानते।

'अपने, आपको, साथ ही सुकन्या को सांत्वना देने के लिए वे एक दिन सुकन्या से कहते हैं : भाग्य पर भरोसा रखो। ईश्वर चाहेगा तो सब ठीक हो जाएगा। सुकन्या पहली बार मुंह खोलती है, तीखी, आवाज में कहती है, नहीं पापा, भाग्य यहाँ कुछ नहीं कर पाएगा। मुझे ही एक मेजर सर्जरी करनी पड़ेगी।'[9]

सुकन्या का सुवीर नाम के युवक से विवाह हो जाता है। विवाह के बाद पता चलता है कि वह अमीर भले हो साथ–साथ वह नशे का आदि है। वह सुकन्या को खुश नहीं रख पाता। दिन–रात शराब के नशे में चूर रहता है। जब सुकन्या यह बात अपने पिता को बताती है तो उसके पिता को बहुत दुःख होता है। वह कहता है कि बेटी भाग्य पर भरोसा रखो सब ठीक हो जाएगा। चिंता मत करो। भगवान सब ठीक कर देगा। सुकन्या को गुस्सा आता है वह कहती है–पापा कुछ ठीक नहीं होगा। भाग्य के सहारे मैं नहीं रह सकती। मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। मैं इस नरक से बाहर आना चाहती हूँ।

वह मूर्ख था, पर केवल पढ़ने लिखने में। अपने घर के मामले समझने की जन्मजात ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा थी। भाग्य व भगवान के विषय में वह न जाने क्या कहता था। कभी–कभी अपना भारी सिर हिलाकर मुझसे कहता था जिस आदमी का नाम भगवान के नाम पर होता है, उसे जूते खाने पड़ते हैं। भगवान बदला लेता है। देखो, रमन्ना को जेहला हो गई। वह वहीं मर गया। उसका लड़का रहा रमन्ना। कुलीगिरी करते–करते उसका दम निकल गया। तुम्हारे काका का नाम है रामनाथ सिंह। गाय–भैसों का

चार काटते–काटते उसके हाथों में गड्ढे पड़ गए। तुम्हारा नाम रामदास सिंह है, चना चबाते–चबाते तुम्हारे दाँत पथरा रहे हैं। इसीलिए हमारे बाप ने अपना नाम रखा छोटूसिंह, मेरा नाम नन्हू सिंह और छुटकुन्नू का बड़ा नाम रखना चाहा तो भगवान सिंह और दशरथ सिंह नहीं रखा।[10]

रामदास ठाकुर के छोटे बेटे नन्हू सिंह के साथ स्कूल में पढ़ने जाता है। नन्हू सिंह पढ़ाई में तो कमजोर था परन्तु व्यावहारिक ज्ञान की कमी न थी। वह बड़ा भाग्यवादी था। भगवान में विश्वास करता था। वह आस्तिक था। उसका मत था कि जिनका नाम भगवान के नाम से शुरू होता हो वह कभी सुखी नहीं रहता। भगवान उनसे अपने नाम का बदला लेता है। रामदास भाग्यवादी नहीं है। अतः उसकी बातें सुनकर उसके दिमाग में उसके प्रति घृणा बढ़ती जाती है। परन्तु ठाकुर का बेटा होने के कारण उसको कुछ नहीं कह सकता। वह भाग्य की अपेक्षा कर्मों पर विश्वास करता है। कर्मक्षेत्र में उतरकर कर्म करने चाहिए। भाग्य के बल पर कुछ नहीं होता। भाग्य के बल पर तो वे निर्भर रहते हैं जो कर्म से मन चुराते हैं। कर्म पर मानव का अधिकार है, फल की चिंता मत करो।

धर्म का खोखलापन :

आज का युग वैज्ञानिक युग है, परन्तु फिर भी समाज में धार्मिक, रीति–रिवाज रूढ़ियाँ प्रचलित हैं, जो धर्म को खोखला बनाते हैं। आज भी पिण्डों, धार्मिक, कर्मकाण्डों पर लोग विश्वास करते हैं। धर्म एवं भाग्यवाद श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास बिस्रामपुर का सन्त के विचार स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। इनसे हमें पता चलता है कि भारतीयों की मान्यतानुसार श्रीलाल शुक्ल भी भाग्यवादी थे, उनका भाग्य पर अटूट विश्वास था, जो भाग्य में है मानव को भोगना पड़ता है। यथा–

'है, श्रीमान, बहुत कुछ है। पर सुन्दरी बेन के भाग्य में तो यहाँ की जहालता से लड़ना भर लिखा था। हमारा समाज कुछ सही ढंग का होता तो उनकी शक्ति पूरी तौर से विकास की योजनाओं में लगती और तब इस क्षेत्र की शक्ल कुछ और होती।'[11]

बिस्रामपुर में जो आश्रम बनाया गया है वहाँ से सुशीला के चले जाने के बाद सुन्दरी अकेली रह गई। कोई नहीं जानता वह कहाँ गई। कोई कहता है कि सुशीला ने शादी कर ली, कोई कहता है वह वर्धा में चली गई। यहाँ की गंदगी में रहना उसको रास नहीं आया। आज का युग वैज्ञानिक युग है परन्तु फिर भी समाज में धार्मिक रीति–रिवाज, रूढ़ियाँ प्रचलित है जो धर्म को खोखला बनाते हैं। आज भी पिण्डो, धार्मिक कर्मकाण्डों पर लोग विश्वास करते हैं।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास राग–विराग में ऐसा ही धर्म का खोखलापन दिखाया गया है। इस उपन्यास का पात्र शंकर एक डॉक्टर है। लोग डॉक्टरों से अपना इलाज न करवा कर जादू–टोनों में विश्वास रखते हैं। देवी देवताओं की पूजा अर्चना करते हैं। उनका मानना है कि इनकी पूजा–उपासना से भगवान प्रसन्न होकर बीमारी को ठीक कर देते हैं। आज का युग वैज्ञानिक व बौद्धिक युग है। इस युग में भी इस तरह की बातें हास्यपद लगती है।

यथा–जब मैं थर्ड इयर में पढ़ता था, एक बार अपने गाँव गया। वहाँ हमारे पड़ोस में एक बढ़ई का घर था। वह बूढ़ा हो चला था। उसके हाथ में कोई काम न था। बहुत गरीब था। उसकी बहू को पेटदर्द की शिकायत थी। गाँव में कहते थे, पेट में 'सूल' उठता था। भयानक दर्द। पिछले चार महीने उसने तड़प–तड़प कर बिताये थे। कभी उसके पेट की शिकाई होती, कभी कड़वे तेल की मालिश, कभी गरम पानी में नमक डालकर उसे पिलाया जाता। स्थानीय जड़ी–बूटी से लेकर टोने–टोटके तक। पर सब बेकार गए।[12]

प्रस्तुत पंक्तियों में साफ है कि बढ़ई की पत्नी पिछले 4 महीनों से दर्द से तड़प रही है। उसे किसी अच्छे डॉक्टर के पास न ले जाकर स्थानीय जड़ी–बूटी दी जाती है। कभी उसका टोने–टोटके से इलाज किया जाता है। कुछ तो मानने लगते है कि इस पर किसी बुरी आत्मा का प्रकोप है। इसको दूर करने के लिए किसी बड़े तान्त्रिक के पास ले जाओ। इतने पैसे जो तान्त्रिक को दिये जा रहे हैं पेट दर्द को ठीक करने के लिए उतने पैसों से किसी अच्छे डॉक्टर द्वारा इलाज भी तो करवाया जा सकता है। हर तरह की कोशिश करने के बाद भी जब पेट दर्द ठीक नहीं होता तो, डॉक्टर की दो गोलियाँ असर कर जाती हैं। इनकी कीमत भी 75 पैसे थी। इससे ज्यादा तो तान्त्रिकों ने अपने बाहरी कर्मकाण्डों में खर्च कर

दिए। फिर भी आराम नहीं लगा। हमारा भारतीय समाज इतना सभ्य, शिक्षित होने के बाद भी उन पुराने आडम्बरों को मानता आ रहा है, जिनको समाज में कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। धर्म के खोखलेपन ने मानव को भी खोखला कर दिया है। दर्द से कराहती युवती को डॉक्टर के पास न ले जाकर तान्त्रिक के पास ले जाते हैं।

सवेरा होते ही नहा कर मैं चिकवे की दुकान पर गया। आधा पाव गोश्त लिया। उसे पानी में धो रहा था। उधर मंदिर में शिव की मूर्ति के सामने सिर्फ गमछा पहन, एक टांग पर खड़े मुसलीदार कड़कर प्रार्थना कर रहे थे।

राम नाम की लूट है लूटा चहे सो लूट
अंतकाल पछताएगा कि प्राण जाएंगे छूट।
फिर दोहरी आवाज में कड़वते हुए :
बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताए।
काम बिगारे आपनों कि जग में होय हंसाया।

वे प्रार्थना कर रहे थे। मैं उसी नीति का उपदेश ले रहा था। हमारे मास्टर साहब जिस सनीचर को लाएंगे–वह–सनीचर का–अवतार होगा।

'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में धर्म के खोखलेपन पर व्यंग्य किया है। धर्म में व्यंग्य एवं खोखलापन विद्यमान है। लोग एक तरपफ तो शिव की अराधना में लगे हैं दूसरे तरफ जीवों का मांस भक्षण कर रहे हैं। एक तरफ हिंसा दूसरी तरफ अहिंसा यह कैसा धर्म है। यह तो धर्म के नाम पर बाह्याडम्बर है। एक पाखण्डी सुबह नहा धोकर एक पैर पर खड़े होकर भगवान की भक्ति करता है। दूसरी तरफ वह जीवों की हत्या करता है। लोगों पर तरह–तरह के अत्याचार करता है।

नित्य प्रति एक नये विषय पर प्रवचन होता। गौतम बुद्ध के इतिहास पर उन्होंने बताया–भागवत में बुद्ध महाराज की कथा है। एक तरफ भैंसों की कतार थी। बढ़िया चरबीदार बकरे दूसरी तरफ मसकसाते हुए खड़े थे। प्रत्येक देवता के नाम पर एक पट्ठा काटा जाने वाला था। तभी भगवान ने अवतार लिया। वे जती का वेश धारण कर यज्ञ में पहुंचे। हाथ में चीवर दूसरे में आसन। चवरें से धरती बुहारी। फिर आसन पर बैठ गए। राजा को अचंभा हुआ–बोले–'तुम कौन हो?'

बुद्ध महाराज ने कड़ककर कहा, 'तुम कौन?'

राजा बोले, 'हम शुद्ध।'

तो वे, 'हम बुद्ध।'

इसी सवाल जवाब में राजा को बोध हुआ कि जती चंवर से जमीन को बुहारकर बैठता है कि चींटी तक न मरे और वह भैंस व बकरी कटाता है। चटाक से उसने बुद्ध के पांव पकड़ लिए।[13]

'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में धर्म के नाम पर की जाने वाली पशु–बलि पर प्रकाश डाला है। धर्म के नाम पर लोग जीवों की हत्या करते हैं। भगवान कभी भी किसी निर्दोष प्राणी की हत्या करके खुश नहीं होता। धर्म के पाखण्डी लोगों का मत है कि भगवान तभी खुश होते है जब उनको पशु बलि दी जाती है। भारतीय समाज में पशुओं की हत्या का रिवाज काफी प्राचीन हैं। भगवान तो केवल भाव के भूखे हैं। उनको बाह्य आडम्बरों के द्वारा प्रसन्न नहीं किया जा सकता। ये बाह्य दिखावे तो मानव ने स्वयं शुरू किये हैं। कभी किसी देवी–देवता ने प्रकट होकर कहा है कि उसको प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि दो।

तभी मालूम हुआ कि एक–एक करके प्रायः सभी बच्चों पर चेचक का आक्रमण हो रहा है।

चलते–चलते वैद्य जी ने मुझसे कहा, 'दो आने पैसे दो।'

मैंने एक दुअन्नी वैद्य जी के हाथ में रखी। उत्सुकता से उनकी ओर देखता रहा। उन्होंने अपने झोले से एक शीशी निकाल कर मेरे हाथ में रख दी। मैं तुम्हें अमृत–बिन्दु की एक शीशी दिए जा रहा हूँ। चरक का एक दुरुपयोग है।

मैंने शीशी हाथ में ले ली। फिर पूछा, 'इसमें कौन–कौन सी औषधियाँ पड़ती हैं। बोले, यह गुप्त रहस्य है। औषधि का तत्त्व जान लेने से उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। जैसे मंत्र का अर्थ जान लेने से मंत्र का अर्थ समाप्त हो जाता है।[14]

धर्म और नैतिकता :

वर्तमान में 'धर्म' शब्द का प्रयोग अधिकांशत सम्प्रदाय या पूजा पद्धति के अर्थ में किया जाता है। परन्तु धर्म से तात्पर्य किसी मत, पंथ, सम्प्रदाय या मजहब की संकुचित व्यवस्था नहीं है। धर्म तो आध्यात्मिक अनुभूति है। 'मार्क्स ने धर्म के बारे में कहा है कि प्राकृतिक परिघटनाओं से प्रेरित भय और चिंता की वजह से धर्म पैदा हुआ है और यह एक भ्रम है जो अन्ततः गायब हो जाएगा। लेकिन उसने एक नया कदम उठाया जब कहा कि भिन्न किस्म के समाजों में धार्मिक सिद्धान्त विचारधाराओं की तरह हो सकते हैं।[15] नैतिक चेतना के पथ पर अग्रसर करना धर्म का स्वभाव है। धर्म और नैतिकता में प्रगाढ़ संबंध है। एक प्रकार से ये पर्यायवाची है 'नैतिक' शब्द 'नीति' से बना है तो 'नी' धातु से क्विन प्रत्यय को जोड़ने से निष्पन्न हुआ है। तात्पर्य मानव को उचित मार्ग की ओर उन्मुख करने से है। अतः नीति से तात्पर्य उस पद्धति से है जो बहुमुखी जीवन से सम्यक् संचालन में सहायक है। इस प्रकार नीति व धर्म का अभिन्न सम्बन्ध है, दुष्कर्म अधर्म है।[16]

भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म या नैतिकता बताती है कि मनुष्य अपने क्रियाकलापों को संयमित, संतुलित एवं नियमित रखे। इस दृष्टि से नैतिकता, धर्म की भांति एक आचार पद्धति है। नीति के नियमों को धर्म कहते हैं। शुक्ल ने धर्म व नैतिकता को एक–दूसरे से जुड़ा हुआ माना है। धर्म के कार्यों में श्रद्धा भाव रखना भी नैतिकता है। मैं चुपचाप रहा। पर चौकीदार अपनी बात बार–बार कहता गया। एक बार फिर बोला, 'विद्या की तपस्या भी मामूली तपस्या नहीं है।'

मैंने कहा, 'मगर श्याममोहन तो मोटर पर स्कूल पढ़ने जाता है। पढ़ने में अच्छा भी है। उसकी तपस्या कहाँ?' चौकीदार ने घबराकर कहा, 'राम राय! भैया किसी के सुख पर कुदृष्टि न डालनी चाहिए। क्या पता उसने पहले जन्म में तपस्या की हो। वह अपनी तपस्या का फल भोग रहा हो। तुम आज तपस्या कर रहे हो, कल उसका फल तुम भी पाओगे।'[17]

'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में शुक्ल जी ने एक चौकीदार के अन्धविश्वास को स्पष्ट किया है। श्याममोहन एक अमीर परिवार से संबंध रखता है। एक आदमी के लिए जहाँ जीवन–निर्वाह करने में मुश्किल है। वहीं पर श्याममोहन स्कूल में आने जाने के लिए मोटर गाड़ी का प्रयोग करता है। रामदास इस आर्थिक विषमता से दुखी है कि इन लोगों ने ही समाज में अव्यवस्था पैदा कर दी है। जबकि चौकीदार का मत है कि यह उसके कर्मों का फल है। उसने पिछले जन्म में अच्छे कर्म किए थे तो इस जन्म में सुख भोग रहा है, जो विद्या की चाहत रखते है उनको सुख नहीं मिलता। विद्या उसकी परीक्षा लेती है, जो इसमें पास हो जाता है उसको सुखों की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार आज तुम जो मेहनत करते हो उसका फल तुमको जरूर मिलेगा। चिन्ता मत करो बस कर्म करते रहो। फल मिलना तो निश्चित है। चौकीदार धर्म में आस्था एवं विश्वास रखता है। उनका मत है कि जो आस्थावादी है वही जीवन में सफल होता है। इस आशावादी दृष्टिकोण के साथ–साथ नैतिकता का होना भी जरूरी है। जो धर्म के नाम पर छल–कपट करते हैं, अधर्म को फैलाते हैं वो कभी फल प्राप्ति नहीं कर पाते। कुछ औपचारिक व भली बात करनी चाहिए। इस व्यग्रता में कालीन पर बैठते–बैठते मैं कहता हूँ, 'आने में देर हुई, क्षमा करेंगे', 'नहीं तो, देर कहाँ हुई? अभी तो सवा सात बजे हैं। क्या गाड़ी देर से पहुँची थी?

मेरे साथ आए साधु ने कहा, 'जी नहीं।' किसी ने कहा, ' हम लोग नीचे ही क्यों न चलें? समय हो रहा है।'

स्वामी जी बोले, 'आप नारायण जी को जलपान भी न करने देंगे?'

'तो फिर नीचे ही चलें।' किसी ने अपनी बात दोहरायी। पर शान्तानंद जी नहीं उठे, इस कारण कोई नहीं उठा। स्वामी जी ने पूछा, 'रहते कहाँ पर हैं, नारायण जी?'

'मकान' उपन्यास में नारायण की नैतिकता का वर्णन किया है। उसको जीवन में अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है किन्तु वह नैतिकता व आदर्श का दामन नहीं छोड़ता। इसी

नैतिकता का परिणाम है कि उसको अपने लक्ष्य में कामयाबी हासिल हो जाती है। सच्चा मानव वही है जो परोपकारी है। लोकमंगल व लोककल्याण को महत्त्व देता है। नारायण अपने काम से समय निकाल कर सत्संग में महात्मा के पास जाता है। जहाँ पर उसे आत्मिक शान्ति का बोध होता है। इस पापाचारी संसार से वह तंग आ चुका है। इसी से मुक्ति पाने के लिए वह कुछ समय के लिए महाराज की शरण में जाकर उनके अमृत वचनों का श्रवण करता है। वह इन वचनों को श्रवण ही नहीं करता बल्कि जीवन में भी ढालने का प्रयास करता है। महाराज के पास जाकर पूछता है कि उसको आने में देरी तो नहीं हुई, अगर हुई हो तो क्षमा करना। महाराज कहते हैं कि तुम तो समय से पहले ही पहुँच गये हो।

निर्मल भाई धर्म प्रचारकों वाले आत्मविश्वास के साथ बोल रहे थे और दोनों विचारधाराओं के मध्य अंतरालों को इतनी सहजता से पार किये जा रहे थे कि विवेक ने उन्हें बोलते रहने के लिए प्रोत्साहित रखना ही ज्यादा सही समझा। स्पष्ट था कि निर्मल भाई की प्रवृत्ति उन समन्वयवादी धर्मोपदेशकों की थी जो विभिन्न धर्मों की अलग–अलग आस्था संबंधी स्थापनाओं, पौराणिक मान्यताओं, कर्मकाण्डों और दैनदिंन व्यवहार की असमानताओं को नजरअंदाज कर देते हैं वे भूल जाते हैं कि अपने समग्र रूप में सारे धर्म आज मानव समाज में पारस्परिक घृणा, हिंसा और असहिष्णुता की पौधशाला बने हुए हैं।[18]

'बिस्रामपुर का सन्त' उपन्यास में निर्मल भाई अपनी धर्म सम्बन्धी नैतिकता का प्रचार करने में लगे हैं। उन्होंने भूदान यज्ञ में भी काफी समाज सेवा का कार्य किया है। निर्मल भाई का मत है कि सब धर्म एक ही है। उनकी मान्यताएँ, स्थापनाएँ व नियम भले ही एक न होकर अलग–अलग हो। परन्तु सभी धर्मों का सार मानव–सेवा व समाज सेवा है। आपने किसी धर्म में देखा है कि वह अनैतिकता का प्रचार कर रहा है। सब धर्म नैतिकता का सार है। अतः निर्मल भाई धर्मों में मतभेद उत्पन्न नहीं करते हैं। वे धर्म के क्षेत्र में अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वे कहते हैं कि संसार में जितने भी धर्म हैं। सबके अपने–अपने धर्म ग्रन्थ हैं। आप उनमें से किसी को भी उठा लें, आपको उनमें धार्मिक सहनशीलता, सहिष्णुता एवं नैतिकता के दर्शन होंगे। धर्म का नैतिकता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म एक ऐसी चीज है जो धर्म से बनावटीपन को खत्म करके वास्तविकता के दर्शन करवाता है।

जाहिर था, वह कॉलेज के लिए तैयार होकर निकला है। पिता को देखकर उसने साइकिल दीवार के सहारे खड़ी कर दी, उनके पैर छुए और बरामदे में पड़ी कुछ पुरानी कुर्सियों की ओर इशारा करके, 'यहाँ या अंदर कमरे में?'

'बिस्रामपुर का संत' में विवेक नैतिकता से परिपूर्ण है। यद्यपि पिता के बनावटीपन के कारण उन दोनों के संबंध ज्यादा मधुर नहीं हैं। एक पिता के प्रति उनके दिल में उतनी मधुरता भले न हो जितनी की इकलौती औलाद की अपने पिता के प्रति होनी चाहिए। परन्तु फिर भी विवेक अपने पिता को पूरा सम्मान देता है। उनकी बातों की अवमानना नहीं करता। आज तक घर में पिता की मर्जी के खिलाफ कोई कार्य नहीं करता। शहर में जाने के बाद भी पिता की चिंता सताती रहती है। छुट्टियों में दोस्तों के पास न रहकर घर चला आता है। पिता पर उनके साथ रहने का दबाव डालता है। प्रातः उठते ही वह अपनी दिनचर्या में लग जाता है। पिता जी कहीं बाहर गये हों तो इंतजार करता है कि उनसे प्रणाम व पैर छूकर घर से बाहर जाए। यह आदत उसे बचपन से है। आज भी जब वह कॉलेज में पढ़ाने के लिए जाता है तो पिता के पैर छूता है तब जाता है।

बाहर कहीं घंटी बजी। मंत्री जी ने कहा कि प्रार्थना का समय हो रहा है। वे आज पहले दिन इस प्रार्थना को छोड़ना नहीं चाहते थे। पर स्वभाव और दिनचर्या का अभ्यास इतने बदलाव को एक साथ झेलने के लिए तैयार न थे। उन्हें लगा कि प्रार्थना में वे शामिल होते तो अच्छा होता, कम से कम आश्रम के शासन के लिए यह सही कदम होता। पर उन्होंने मंत्री जी से कह दिया था कि, 'कल से... मैं कल से प्रार्थना सभा में आऊँगा।' कुंवरजयंती प्रसाद सिंह के मन में विश्राम, अनुशासन, सही कदम आदि शब्द तो जरूर उभरे पर प्रार्थना सभा का या प्रार्थना की सार्थकता का सवाल एक क्षण के लिए भी नहीं उठा।[19]

मंत्री साहब कुंवर जी से काफी प्रभावित है। वे कुंवर साहब से मिलने आश्रम में पहुंच जाते हैं। वहाँ पर घण्टी बजती है। इसका मतलब था कि प्रातःकाल की प्रार्थना का समय हो चुका है। कुंवर साहब से मंत्री ने कहा कि आप हमारे साथ चले तभी कुंवर साहब ने कहा कि प्रातःकाल की प्रार्थना का समय हो

गया है। उसने मंत्री जी से कहा कि यह आश्रम में नियमों का उल्लंघन होगा। यदि मैं ऐसा करूँगा तो आश्रम के नियमों को तोड़ूंगा। मंत्री जी बोले कुंवर साहब आप आज मेरे साथ चलो। कल से मैं भी प्रार्थना में शामिल होने के लिए आया करुंगा। मंत्री को बताया कि वह कल से क्यों आज से ही प्रार्थना में शामिल हो जाए। कल किसने देखा है। शुभ कार्य की शुरुआत कल से क्यों आज से ही की जाए। मंत्री जी उनकी बातों से हतप्रभ हो गए कि वे यही है जो एक क्षण के लिए भी आश्रम के नियमों की अवहेलना नहीं करना चाहते हैं। वे बरामदे में आ जाते हैं। अचानक नीचे झुक कर वह उनके पाँव छूती है। कहती है, 'आपको प्रणाम करने आयी थी। अब चलती हूँ।' वे अचानक अपने पैर खींच लेते हैं।

'यह क्या?'

'आप बड़े हैं।'

उनके यहाँ कुंवारी कन्याओं से पाँव नहीं छुआते, खुद उनके पैर छूते हैं। सुंदरी को वे यह बताना चाहते थे पर बता नहीं पाते।[20]

सुंदरी भूदान आंदोलन के सिलसिले में अपने सभी साथियों के साथ कुंवर साहब के घर में रुकी थी। वह जिस मकसद के लिए वहाँ पर आई थी। वह पूरा हो गया। एक दिन सुबह सुंदरी घर से जाने के लिए तैयार हो गई। वह जयंती प्रसाद के पास आई और जाने के लिए कहा। कुंवर साहब ने औपचारिकता का परिचय देते हुए कई दिन और रुकने के लिए प्रार्थना की परन्तु वह बोली बस अब जाना होगा। कुंवर ने कहा अगर हमारे से जाने–अनजाने कोई भूल हुई हो तो माफ करना। कुंवर साहब ने कहा बाहर गाड़ी खड़ी है। ड्राइवर तुम्हें स्टेशन तक छोड़ आएगा। सुन्दरी ने आगे बढ़कर कुंवर साहब के पैर छूने लगी। कुंवर साहब ने अपने पाँव पीछे खींच लिये और कहा कि हमारे यहाँ पर कन्याओं से पाँव नहीं छुआते। खुद कुंवर उनके पाँव छूने लगते हैं। कुंवर साहब भले ही कितने बड़े राजनेता पद पर आसीन हो परन्तु व्यवहारवादी है। अपनी संस्कृति व सभ्यता से प्रेम है। उसका वे अनुसरण करते हैं। राजनीतिक स्तर पर वे भले ही अभिमानी, लालची एवं घमंडी हो परन्तु सामाजिक जीवन में नैतिकवादी है। घर आए मेहमानों का सत्कार करना जानते हैं तभी तो वे बार–बार उनसे कहते रहते हैं कि यहाँ पर कोई समस्या हो तो निसंकोच उनको बताए। वे नौकर को न भेजकर स्वयं उनके पास रातों में जाते हैं। कुछ दिनों से उन्होंने गीता और योगवासिष्ठ भी पढ़ना शुरू कर दिया था और उसकी नियमित चर्चा वे प्रभास भाई से करने लगे थे। वे स्वयं इन बदलावों से परिचित थे और भीतर ही भीतर इस निष्कर्ष पर पहुंच गये थे कि अच्छाई का अभिनय भी अच्छी चीज है, धीरे–धीरे अभिनय समाप्त हो जाता है, सिर्फ अच्छाई रह जाती है।[21]

कुंवर साहब अपनी युवावस्था में जो थे वे आज देखने पर नहीं लगता कि ये वहीं कुंवर साहब है, जो जवानी में नाक पर मक्खी तक नहीं बैठने देते थे। घमण्डी, अहंकारी, क्रूर एवं निर्दयी थे। अपनी युवावस्था के बाद इनका जीवन इतना सादा एवं उच्च हो जाएगा कोई सोच भी नहीं सकता था। जिसका जीवन शराब की बोतल खोलने से शुरू होता था वही आज गीता व योगवासिष्ठ जैसी धार्मिक पुस्तकों से दिन की शुरुआत करते हैं। वे सुशीला व प्रभास भाई के साथ बैठकर भी अपने धार्मिक विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। उनका जीवन नैतिकतापूर्ण हो गया है। सुशीला, प्रभास एवं सुंदरी के सम्पर्क ने उनके जीवन में बहुत भारी परिवर्तन ला दिए हैं। धार्मिक प्रवृत्ति ने उनको इतना ईमानदार, दयालु एवं लोकमंगल से परिपूर्ण कर दिया है। यह सब इनकी नैतिकता पूर्ण व्यवहार का परिणाम था। आज कुंवर साहब में केवल उनकी अच्छाई के सिवाय कुछ नजर नहीं आता है।

धर्म एवं साम्प्रदायिकता :

जब दो अलग–अलग धर्मों के व्यक्ति किसी धार्मिक मामले को लेकर आपस में लड़ने लगते हैं तो समाज में साम्प्रदायिकता फैल जाती है। भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। भारतीय संविधान में भिन्न–भिन्न धर्मों एवं जातियों के प्रति समान रूप से आदर भाव स्थापित किये रखने का संकल्प है। संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों ने भी धार्मिक व जातिवादी दंगे भड़काये हैं। यही कारण है कि परस्पर साम्प्रदायिक तनाव एवं धार्मिक असहिष्णुता दिन–प्रतिदिन उग्र होती जा रही है। देश के स्वतन्त्र होने के तुरन्त बाद हिन्दू–मुस्लमानों के बीच जमकर मारकाट हुई। तब से लेकर आज तक हिन्दू–मुस्लमान दंगे बार–बार हुए हैं। कुछ असामाजिक तत्त्व और राजनीतिज्ञ ऐसे अवसरों का भी लाभ उठाते हैं। शुक्ल जी के साहित्य में

साम्प्रदायिकता का भी वर्णन मिलता है। जब तक हमारे समाज में साम्प्रदायिक दंगे होते रहेंगे तब तक हमारा समाज उन्नति नहीं कर सकता।

बद्री पहलवान हमेशा से सनीचर से अधिक बातें करने में अपनी तौहीन समझते थे। उन्हें शक हुआ कि आज यह मौका पाकर मुंह लग रहा है। इसीलिए वे उठकर खड़े हो गये। कमर से गिरती हुई लुंगी को चारों तरफ लपेटते हुए बोले, घबराओ नहीं एक दियासिलाई तुम्हारे टूटे छप्पर में भी लगाये देता हूँ। यह चिन्ता अभी दूर हुई जाती है।[22]

रंगनाथ हाथ जोड़कर प्रतिभा के पास चला और उसे देखता रहा। प्राचीन मूर्ति कला के बारे में जो कुछ पढ़ा था। वह उसको निरर्थक जान पड़ा। रंगनाथ ने पुजारी से पूछा, 'यह किस देवता की मूर्ति है?'

पुजारी बहुत व्यस्त था। चिल्लाकर बोला–'कुछ जेब में से निकालकर पूजन चढ़ाओ, तब अपने जान जाओगे कि कौन देवता है।'[23]

'अरे रामदास, इन जिन्नात की न पूछो। कहने को तो ये मुसलमान हैं, पर ये तुम्हारे हिन्दू भूतों से बढ़कर भयानक हैं। तुम्हारे यहाँ तो भूत पटकता है, प्रेत खाने को दौड़ता है, अगिया बेतान बदन झुलझाता है। चुड़ैल पास लेटकर आदमी का खून चूस लेती हैं, बरमराक्षस पीपल का पेड़ सिर पर गिरा देता है, पर लेता क्या है? ज्यादा से ज्यादा छह सात महीने बुखार आ जाता है। पर ये जिन्नात व खबीस सबके चाचा होते हैं। खबीस के एक नथना व एक आँख होती है। नाखून बड़े–बड़े होते हैं। जिस पर यह शै सवार होती है। उसके जिस्म में दिन–रात नाखून गड़ते रहते हैं। उसकी छाती में खबीस के तार–जैसे बाल चुभा करते हैं।'[24]

उनसे पहले यहाँ के राज्यपाल पुराने गाँधीवादी नेता थे। भाग्य के न जाने किस कुण्डलीचक्र में सरकते हुए जेलों, दंगाग्रस्त इलाकों, कुष्ठाश्रमों और हथकरघा केन्द्रों की धूल अपनी पुरानी चप्पलों में लसेटे हुए कुछ वर्षों के लिए इस राजभवन में भटक गए थे। वे हरिजन थे और पिछड़े वर्गों के विकास में उनकी रुचि बेहिचक प्रकट होती रहती थी। तब 'दलित' शब्द का इतना प्रयोग नहीं होता था और गाँधीवादी परम्परा में अपने को हरिजन या हिरजन सेवक मानना असमंजस की बात न थी, जो भी हो, अफसरशाही इन कारणों से उन्हें जातिवादी कहा करती थी।[25]

कुंवर साहब अपने समय के राज्यपाल होने के साथ–साथ साम्प्रदायिक नेता के रूप में भी विद्यमान थे। वे अपने से बड़ा किसी हरिजन को मानने के लिए तैयार न थे। एक बार कुंवर से पहले के राज्यपाल हरिजन थे। सत्ता में आते ही कुंवर ने लाखों रुपये खर्च करके राजभवन की हर चीज बदलवा दी। जिस सोफे पर हरिजन बैठा, जिन पर्दों को उसने कभी छुआ हो। ऐसी स्थिति में मैं उन सब चीजों को नहीं प्रयोग कर सकता। हम धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। यह हमारे धर्म को भ्रष्ट कर देगी। कोई भी चीज जो हमारी धार्मिकता पर प्रहार करें हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते। इसीलिए हमारा धर्म भ्रष्ट न हो हम वजह ही खत्म कर देते हैं। एक राजनेता धर्म की आड़ लेकर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रहा है, परन्तु स्वयं की मानसिकता को नहीं त्यागता।

'अरे चमरवा ने मेरे ऊपर गुठली थूक दी। इसके दाँत तोड़ दूंगा।'

दूसरा कहता है' यह हमेशा हम पर थूकता है।

इसका पहाड़ा पढ़ा जाए। तब कुछ बामन व ठाकुरों के लड़के हरीराम को पकड़ लेते। वह चमार का लड़का था। एक बंदर के बच्चे की भांति वह चिचियाने लगता। उसकी आँखें हाथों से बंद करके दूसरे लड़के, उसके सिर पर चपतें मारते और हर चपत पर कहते–

'दो के दो'

'दो दूने चार'

'दो तियां छह।'

जैसे ही पण्डित जी दिखाई देते, हम सब भाग कर अपनी–अपनी तख्तियों के साथ छप्पर के नीचे बैठ जाते और गला फाड़–फाड़कर पढ़ते।'

पर पण्डित जी के आते ही वे आवाजें भी दब जातीं और एक–एक करके शिकायतें होने लगती।

'पंडित जी चमरवा न थूका दिया।'

'पण्डित जी, रमचन्नी ने मेरी कमर तोड़ दी।'

देबिया ने मेरी कमीज पर खड़िया डाल दी।'[26]

'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में यह साम्प्रदायिकता की भावना देखी जा सकती है। रामदास जिस स्कूल में पढ़ते हैं। वहाँ पर एक पण्डित जी स्कूल में पढ़ाते हैं। वह बच्चों के साथ भेदभाव करते हैं। उनके पद चिह्नों पर चलकर कक्षा के बालक भी अपने साथ पढ़ने वाले बच्चों के साथ साम्प्रदायिकता के आधार पर भेदभाव करते हैं। स्कूल में क्षत्रिाय व ठाकुरों के बच्चों के साथ चमार जाति के बच्चे भी पढ़ते है। ये अमीर घरों के छात्र इन गरीब व नीची जाति के छात्रों के साथ अभद्र व्यवहार करते हैं। ये छात्र गुरु जी के कक्षा में आते ही बच्चे उनसे शिकायत करनी शुरू कर देते हैं। अध्यापक कुछ नहीं बोलता। कभी गुस्सा हो तो इन सभी बच्चों को खड़ा करके दण्ड देना शुरू कर देते हैं।

मिट्टी और पानी से अपने हाथों को शोधित करके वैद्य जी चलते बने तभी एक मजदूरनी आकर उनके पैरों पर गिर गई। वैद्य जी चौंककर पीछे हट गए, बोले, 'शिव, शिव, शिव न जाने कौन जाति है?

अपना रोग तो बताओ?'

उसने बताया कि उसके दो बच्चों को एक साथ चेचक निकल आई है। वैद्य जी ने उसे आदेश दिया, 'शीतला का स्मरण करो, वही रक्षा करेगी। इसमें औषधि व्यर्थ है।[27]

रामदास के गाँव में भयंकर बीमारी फैल गई हैं। वैद्य जी एक हैं पूरे गाँव का इलाज वही करते हैं। जब मजदूर औरत उनके पास गई तो वे पूजा समाप्त करके कमरे से बाहर निकल रहे थे। तभी वह औरत उनके चरणों में गिरकर रोने लगी। वैद्य जी ने भगवान का नाम मुख से निकालते हुए कहा कि कौन है पता नहीं, किस जाति की है। मेरा सुबह–सुबह धर्म भ्रष्ट कर दिया। उसने कहा कि इस बीमारी में दवा व्यर्थ है। बस दैवी माता का स्मरण करती रहो। धार्मिक लोग जो भगवान की पूजा करते हैं वे भी साम्प्रदायिक में विश्वास करते हैं। ये ढोंगी व पाखण्डी है। धर्म का नाम लेकर ढोंग का प्रचार करते हैं। कुछ देर बाद आँखें मूंदे ही मूंदे वे पहले जैसी भर्राई आवाज में बोले, 'टिनेंसी एक्ट लग गया है। अब कोई बेदखल नहीं किया जा सकता है। अब गंगापुर के पासी चमार तक महाराज हो जाएंगे। खराब दिन आए हैं।[28]

रामदास आगे पढ़ना चाहता है। इसीलिए वह रामचरण को साथ लेकर महाराज के पास जाते हैं। सबका मत है कि ये महाराब बिना किसी भेदभाव के सबकी मदद करते हैं। ये महाराज अमीर होने के साथ–साथ काफी दयालु एवं धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। रामदास ने उनके पाँव छूकर अपनी समस्या बता दी। महाराज ने उनकी सहायता कर दी। किन्तु महाराज का व्यवहार बतला रहा था कि वे बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। परन्तु उन्होंने रामदास के साथ जो भेदभाव किया वह साफ बता रहा था कि वे साम्प्रदायिकता में विश्वास रखते हैं। उनका समानता का नजरिया झूठा है। धर्म की आड़ लेकर वे समाज में जातिवाद का प्रचार करते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि श्रीलाल शुक्ल जी का साहित्य धार्मिक भावना से ओत–प्रोत है। पाण्डे जी ने धर्म का विस्तृत वर्णन किया है। धार्मिक रीति–रिवाजों, अन्धविश्वासों ने धर्म को खोखला बना दिया है। आजकल ढोंगी, पाखण्डी लोग धर्म के नाम पर लूट मचाते हैं, हमें गुमराह करते हैं। हम आज भी इतने अन्धविश्वासी बने हुए हैं कि इसके चक्कर में अपना सब कुछ नष्ट कर देते हैं। भाग्यवाद का श्रीलाल शुक्ल जी ने विरोध किया। मनुष्य अपने कर्मों से बड़ा बनता है। हाँ, ये सच है कि कुछ हद तक भाग्य का साथ होता है, परन्तु सब कुछ भाग्य पर ही छोड़ देना व्यर्थ है।

धार्मिक कट्टरपन व साम्प्रदायिकता की धर्म में अहम् भूमिका होती है। साम्प्रदायिकता एक ऐसा जहरीला बाण है जो धर्म रूपी शरीर को छेद कर रख देता है। साम्प्रदायिकता को बढ़ावा भी कुछ

असामाजिक लोग देते हैं जो धर्म के नाम पर एक–दूसरे को भड़काते हैं। हमें समाज को ऐसे लोगों से बचाना चाहिए। जो धर्म को अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करते हैं। भारत धर्म निरपेक्ष देश हैं हमें सभी धर्मों का समान समझना चाहिए परन्तु धार्मिक कट्टरता के कारण कोई भी अपने धर्म को बड़ा मानने को तैयार नहीं होता। अपने धर्म के लिए जान तक दे देते हैं।

संदर्भ :

1. धरणाद्र्थ नित्याहुर्ध्मा धरयते प्रजाः महाभारत : कर्ण, पृ. 69
2. यातोभ्युदयानिः श्रेयस्सिद्धिः स धर्मः। कणादः वैशेषिक दर्शन, पृ. 10, 12
3. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 549
4. राधकृष्णन : द हिन्दू न्यू ऑफ लाइफ, पृ. 27
5. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 49
6. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 51
7. श्रीलाल शुक्ल, मकान, पृ. 170
8. वही, आदमी का जहर, पृ. 61
9. श्रीलाल शुक्ल, रागबिराग, पृ. 78
10. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 30
11. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 31
12. वही, रागविराग, पृ. 15
13. श्री लाल शुक्ल, सूनी घाट क सूरज, पृ. 38
14. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 56
15. टी.बी. बाटमोर, समाजशास्त्र, पृ. 218–19
16. डॉ. राजवध्वा, आधुनिक हिन्दी काव्य और नैतिक चेतना, पृ. 1
17. श्री लाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 68
18. श्री लाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 172
19. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 84
20. श्रीलाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 135
21. श्री लाल शुक्ल, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 153
22. श्रीलाल शुक्ल, रागदरबारी, पृ. 105
23. वही, पृ. 117
24. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 34
25. वही, बिस्रामपुर का सन्त, पृ. 14
26. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 22
27. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज, पृ. 55
28. वही, पृ. 62